

राजस्थान उच्च न्यायालय,**जयपुर पीठ**

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 14984/2013

आर. मगदैया पूर्व कांस्टेबल पुत्र श्री रंगैया, आयु-43 वर्ष, निवासी शंभू देवना
हल्ली, पोस्ट-मदबल, पी.एस. मगदी, जिला- बैंगलोर (कर्नाटक)

-----याचिकाकर्ता

बनाम

1. महानिरीक्षक, के.रि.पु.ब. (सीआरपीएफ), राजस्थान सेक्टर, केंद्रीय
सदन, ब्लॉक-बी, तृतीय तल, विद्याधर नगर, जयपुर (राजस्थान)
2. अपर उप महानिरीक्षक, ग्रुप सेंटर प्रथम, के.रि.पु.ब., अजमेर
(राजस्थान)

-----प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता की ओर से : श्री सुनील कुमार सिंह, (वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के
माध्यम से)

प्रतिवादीगण की ओर से : श्री आनंद शर्मा साथ में सुश्री प्रियंका गुप्ता

न्यायाधीश अनूप कुमार ढंड**आदेश**

आरक्षित करने की तिथि : 27/01/2025

सुनाने की तिथि : 05/02/2025

रिपोर्ट करने योग्य

1. इस याचिका को दायर करके, आक्षेपित आदेश दिनांक 11.10.2008 को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है। उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने एक विभागीय अपील दायर की, हालांकि, उसे भी आदेश दिनांक 27.09.2012 द्वारा खारिज कर दिया गया और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.10.2008 को बरकरार रखा गया।
 2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को पीठ दर्द के कारण 26.08.2007 से 25.10.2007 तक अवकाश स्वीकृत किया गया था, हालांकि, वह इयूटी पर उपस्थित नहीं हो सका और उसने अपने अवकाश को बढ़ाने के लिए उच्चाधिकारियों के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को गिरफ्तार और परिरुद्ध किया गया और उसके बाद, उसे इस आरोप के साथ आरोप-पत्र दिया गया कि उसने एक साथी कांस्टेबल के कमरे में अनधिकृत रूप से प्रवेश किया और वहां रुका। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय जांच की गई, तो साथी कांस्टेबल की पत्नी, यानी पूर्णिमा, के बयान दर्ज किए गए, जिसमें उसने याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया, इसलिए, इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता की सेवाओं को बर्खास्त नहीं किया जाना चाहिए था। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस महत्वपूर्ण तथ्य की अनुशासनिक प्राधिकारी और साथ ही अपीलीय प्राधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय अनदेखी की गई है, इसलिए, इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय का हस्तक्षेप अपेक्षित है।
-

3. *इसके विपरीत*, प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता, अनुशासित बल का सदस्य होने के नाते, उससे अनुशासन का पालन करने की अपेक्षा की जाती थी, लेकिन वह स्वीकृत अवकाश की अवधि से अधिक रुका। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता बेंगलोर में तैनात था और उसका तबादला अजमेर कर दिया गया था, लेकिन उसने अजमेर में रिपोर्ट नहीं की और बाद में, उसे बेंगलोर में प्रतिवादीगण के परिसर को पार करते हुए और अपने साथी कांस्टेबल के कमरे में अनधिकृत रूप से प्रवेश करते हुए पाया गया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि नियमों के अनुसार, याचिकाकर्ता का ऐसा आचरण अनुचित था, इसलिए, इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र दिया गया, जिसमें न केवल उसके साथी कांस्टेबल की पत्नी, बल्कि अन्य गवाहों, अर्थात्, ए. एस. दुरानी, एम.आर. चंद्रन, उषा सेठी, के.आर.वी. नायर, वी.एम. मेलर सेठी, एल सुरेश, गिरधारी लाल, सुनील कुमार यादव और प्रभु सिंह मीणा के बयान भी दर्ज किए गए और याचिकाकर्ता को जिरह (प्रति-परीक्षा) का अवसर भी दिया गया और जांच समाप्त होने के बाद, याचिकाकर्ता का दोष सिद्ध पाया गया और उसके बाद, मामले को अनुशासनिक प्राधिकारी को भेजा गया, जिसने याचिकाकर्ता को सेवा से समाप्त करने का निर्णय लिया। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले जांच रिपोर्ट की प्रति याचिकाकर्ता को दी गई थी। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता ने आक्षेपित आदेश पारित होने की तारीख से तीन साल से अधिक की देरी के बाद अपील प्रस्तुत की, हालांकि, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा एक सकारण और ठोस आदेश दिनांक 27.09.2012 पारित करते हुए अपील को भी खारिज कर दिया गया, जिसमें इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता

नहीं है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा विभागीय जांच में किसी भी प्रकार की कोई विकृति नहीं बताई गई है, इसलिए, इन परिस्थितियों में, यह न्यायालय एक समीक्षा प्राधिकारी के रूप में कार्य करते हुए, अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन नहीं कर सकता है।

4. अपने तर्कों के समर्थन में, प्रतिवादीगण के अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **भारत संघ और अन्य बनाम बी.सी. चतुर्वेदी रिपोर्टेड इन (1995) 6 एससीसी 750** मामले में पारित निर्णय पर भरोसा किया है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त प्रस्तुत किए गए तर्कों के मद्देनजर, वर्तमान याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

5. बार में दी गई दलीलों को सुना और विचारा गया तथा पत्रावली पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

6. पत्रावली के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता को केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम, 1949 (संक्षेप में, "1949 का अधिनियम") की धारा 11 (1) के साथ पठित केन्द्रीय पुलिस बल विनियमन, 1995 के नियम 27 के तहत एक आरोप-पत्र दिया गया, जिसमें आरोप लगाया गया कि केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल (संक्षेप में, "के.रि.पु.ब.") का सदस्य होने के नाते, उसने 25.03.2008 को (अवकाश अवधि समाप्त होने के बाद अपनी अनुपस्थिति के दौरान) के.रि.पु.ब. परिसर में प्रवेश करके और बैंड कांस्टेबल, एल. सुरेश के आवासीय आवास (क्वार्टर) में प्रवेश करके दुर्व्यवहार किया और कदाचार किया, जहाँ केवल उसकी पत्नी और छोटा बच्चा मौजूद थे। इसे संदेहास्पद पाते हुए, गश्त पर तैनात आर.पी. द्वारा याचिकाकर्ता को क्वार्टर से बाहर आने के लिए कहा गया, लेकिन जब उसने

भागने का प्रयास किया, तो उसे पकड़ लिया गया। ऐसा कृत्य और आचरण घोर कदाचार की श्रेणी में आता है।

7. आरोप-पत्र प्राप्त होने पर, याचिकाकर्ता ने अपना जवाब प्रस्तुत किया और खुद को निर्दोष बताया। इसके बाद, एक जांच की गई, जिसमें 13 गवाहों के बयान दर्ज किए गए। गवाह पूर्णिमा को छोड़कर, अन्य सभी 9 गवाहों ने याचिकाकर्ता के खिलाफ गवाही दी। हालांकि पूर्णिमा ने 25.03.2008 की कथित घटना के घटित होने से इनकार किया, जबकि अधिकांश अन्य गवाहों ने कहा है कि याचिकाकर्ता बैंड कांस्टेबल, एल. सुरेश के आवासीय क्वार्टर में घुसा था, और जब उसे ऐसा करने के लिए कहा गया तो वह बाहर नहीं आया, इसलिए उसे पकड़ लिया गया। जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को कदाचार का दोषी माना और उसके खिलाफ आरोपों को सिद्ध पाया।

8. उपरोक्त जांच रिपोर्ट के आधार पर, अनुशासनिक प्राधिकारी ने आक्षेपित आदेश दिनांक 11.10.2008 द्वारा याचिकाकर्ता को सेवाओं से बर्खास्त करने का निर्णय लिया। जिसके खिलाफ, याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष एक अपील प्रस्तुत की, हालांकि, उसे भी आक्षेपित आदेश दिनांक 27.09.2012 द्वारा खारिज कर दिया गया और बाद में, उसकी पुनरीक्षण याचिका भी खारिज कर दी गई।

9. मुख्य गवाह पूर्णिमा पत्नी बैंड कांस्टेबल, एल. सुरेश ने जांच के दौरान अपने बयानों में याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों का समर्थन नहीं किया। उससे एक विशिष्ट प्रश्न पूछा गया कि, "क्या बैंड कांस्टेबल आर. मगदैया (याचिकाकर्ता) उसके क्वार्टर नंबर 326 टाइप- II में घुसा था या नहीं?" जिसका उसने नकारात्मक में उत्तर दिया और कहा कि कोई भी

उसके क्वार्टर में नहीं आया था। उसने आगे कहा कि वह इस तथ्य से अनजान है कि याचिकाकर्ता को कहाँ से पकड़ा गया था। जबकि अन्य गवाहों ने एक अलग कहानी बताई है कि याचिकाकर्ता क्वार्टर नंबर 326 टाइप- II में मौजूद था और जब उसे बाहर आने के लिए कहा गया, तो उसने भागने की कोशिश की, और अधिकारियों द्वारा पकड़ा गया।

10. घरेलू जांच के दौरान गवाहों द्वारा याचिकाकर्ता के क्वार्टर नंबर 326 टाइप- II में अनधिकृत प्रवेश का आरोप सिद्ध किया गया। इस तथ्य के आधार पर, याचिकाकर्ता को कदाचार का दोषी पाया गया और तदनुसार, उसे सेवा से बर्खास्त कर दिया गया।

11. अब इस न्यायालय के विचार के लिए जो प्रश्न शेष हैं, वे हैं, "क्या याचिकाकर्ता का साथी कांस्टेबल के क्वार्टर में अनधिकृत प्रवेश इतना घोर कदाचार है, जो सेवा से बर्खास्तगी के दंड को उचित ठहराता है" और "क्या ऐसे आचरण के लिए, सेवा से बर्खास्तगी का दंड उचित है या अनुचित?"

12. यह न्यायालय अनुशासनिक प्राधिकारी के निर्णय पर न्यायिक हस्तक्षेप के दायरे के बारे में पर्याप्त रूप से सचेत है। इस तरह के मामलों में हस्तक्षेप का दायरा बहुत संकीर्ण और सीमित है, लेकिन उच्च न्यायालय के पास उन मामलों में राहत को संशोधित करने की शक्तियां हैं जहां लगाया गया दंड/शास्ति न्यायिक अंतरात्मा को झकझोरता है।

(12.1) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बी.सी. चतुर्वेदी (उपरोक्त)** मामले में, पैरा 12, 2 और 5 में इस प्रकार माना है: -

"12. न्यायिक समीक्षा किसी निर्णय के खिलाफ अपील नहीं है,

बल्कि उस तरीके की समीक्षा है जिससे निर्णय लिया गया है।

न्यायिक समीक्षा की शक्ति यह सुनिश्चित करने के लिए है कि व्यक्ति को निष्पक्ष व्यवहार मिले, न कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्राधिकरण जिस निष्कर्ष पर पहुंचता है, वह आवश्यक रूप से अदालत की नजर में सही हो। जब किसी लोक सेवक द्वारा कदाचार के आरोपों पर जांच की जाती है, तो न्यायालय/अधिकरण यह निर्धारित करने से संबंधित होता है कि क्या जांच एक सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी या क्या नैसर्गिक न्याय के नियमों का पालन किया गया है। क्या निष्कर्ष या खोज किसी साक्ष्य पर आधारित हैं, जांच करने की शक्ति रखने वाले प्राधिकारी के पास तथ्य या निष्कर्ष तक पहुंचने का क्षेत्राधिकार, शक्ति और अधिकार है। लेकिन वह निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित होना चाहिए। न तो साक्ष्य अधिनियम के तकनीकी नियम और न ही उसमें परिभाषित तथ्य या साक्ष्य के प्रमाण, अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू होते हैं। जब प्राधिकारी उस साक्ष्य को स्वीकार करता है और निष्कर्ष को उससे समर्थन मिलता है, तो अनुशासनिक प्राधिकारी यह मानने का हकदार है कि दोषी अधिकारी आरोप का दोषी है। न्यायालय/अधिकरण अपनी न्यायिक समीक्षा की शक्ति में साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने और साक्ष्य पर अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है। न्यायालय/अधिकरण वहां हस्तक्षेप कर सकता है जहां प्राधिकारी ने दोषी अधिकारी के खिलाफ नैसर्गिक न्याय के नियमों के असंगत तरीके से कार्यवाही की हो या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन

किया हो या जहां अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पहुंचा गया निष्कर्ष या खोज बिना किसी साक्ष्य के आधारित हो। यदि निष्कर्ष या खोज ऐसी है जिस पर कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति कभी नहीं पहुंचता, तो न्यायालय/अधिकरण निष्कर्ष या खोज में हस्तक्षेप कर सकता है, और राहत को इस तरह से संशोधित कर सकता है कि वह प्रत्येक मामले के तथ्यों के लिए उपयुक्त हो।"

"2. यह अपील और भारत संघ द्वारा दायर साथी अपील, प्रशासनिक अधिकरण के ओ.ए. संख्या 609/1986 दिनांक 14 मार्च, 1989 के आदेश से उत्पन्न होती है। अपीलकर्ता की सत्यनिष्ठा, जब वह आयकर अधिकारी के रूप में कार्यरत था, संदेह के घेरे में आ गई थी। सी.बी.आई. द्वारा की गई जांच पर, उसने प्रतिवादी को बताया था कि यद्यपि जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य से पता चला है कि अपीलकर्ता के पास उसकी आय के ज्ञात स्रोत से अधिक संपत्ति थी, चूंकि साक्ष्य भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 5(1)(ई) के तहत अभियोजन चलाने के लिए पर्याप्त मजबूत नहीं थे, इसलिए सक्षम प्राधिकारी अपीलकर्ता के खिलाफ विभागीय जांच में आगे बढ़ सकता है।"

"5. दलील का विरोध करते हुए, संघ के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिकरण को साक्ष्य का मूल्यांकन करने या यह पता लगाने के लिए गुण-दोष के आधार पर साक्ष्य पर विचार करने का अधिकार नहीं था कि क्या अपीलकर्ता के पास आय

से अधिक संपत्ति थी। अधिकरण ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने में गलती की। अनुशासनिक प्राधिकारी के पास दंड लगाने की निर्विवाद शक्ति और अधिकार था। जांच अधिकारी और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पाए गए तथ्यों पर कि अपीलकर्ता के पास उसकी आय के ज्ञात स्रोत से अधिक संपत्ति थी, अधिकरण का सेवा से बर्खास्तगी के दंड में हस्तक्षेप करना, और इसके बजाय, अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश देना अनुचित था।"

(12.2) आनुपातिकता का सिद्धांत इस प्रकार हमारी न्यायशास्त्र में न्यायिक समीक्षा की एक सुस्थापित अवधारणा है और यदि यह पाया जाता है कि दंड असंगत है, तो अदालत के लिए अपनी न्यायिक समीक्षा के सीमित दायरे में हस्तक्षेप करना खुला रहता है।

(12.3) कदाचार की तुलना में दंड की आनुपातिकता के सिद्धांतों को विभिन्न यूरोपीय देशों के साथ-साथ ब्रिटिश अदालतों द्वारा भी मान्यता दी गई है। यह बार-बार माना गया है कि यदि किसी कर्मचारी पर लगाया गया दंड अनुपात से बाहर है, तो न्यायालय को उसमें हस्तक्षेप करने की शक्ति है।

काउंसिल ऑफ सिविल सर्विस यूनियंस बनाम मिनिस्टर फॉर द सिविल सर्विसेज रिपोर्टेड इन (1984) 3 ऑल ई.आर. 935, में यह देखा गया है कि:

"... न्यायिक समीक्षा, मेरे विचार में, आज एक ऐसे चरण तक विकसित हो गई है, जब, उन कदमों का कोई विश्लेषण दोहराए बिना, जिनसे यह विकास हुआ है, कोई भी उन आधारों को तीन

शीर्षों के तहत आसानी से वर्गीकृत कर सकता है जिन पर प्रशासनिक कार्रवाई न्यायिक समीक्षा द्वारा नियंत्रण के अधीन है। पहले आधार को मैं 'अवैधता' कहूंगा, दूसरे को 'तर्कहीनता' और तीसरे को 'प्रक्रियात्मक अनुचितता'। इसका मतलब यह नहीं है कि समय के साथ मामले-दर-मामले आधार पर और विकास, और आधार नहीं जोड़ सकता है। मेरे मन में विशेष रूप से भविष्य में 'आनुपातिकता' के सिद्धांत को अपनाने की संभावना है, जिसे यूरोपीय आर्थिक समुदाय के हमारे कई साथी सदस्यों के प्रशासनिक कानून में मान्यता प्राप्त है।..."

सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने भी दंड की आनुपातिकता के सिद्धांत को मान्यता दी जब उन्होंने कहा कि "दंड लगाने वाला एक आदेश, जो चौंकाने वाला असंगत या कदाचार की गंभीरता को देखते हुए अत्यधिक है, उसे मनमाना और इस प्रकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन घोषित किया जा सकता है।"

(12.4) भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य रिपोर्टेड इन (1983) II

एलएलजे 1 एससी, में सर्वोच्च न्यायालय ने माना: (पी-7)

"यह भी उतना ही सच है कि लगाया गया दंड कदाचार की गंभीरता के अनुरूप होना चाहिए और कदाचार की गंभीरता के असंगत कोई भी दंड संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगा..."।

(12.5) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने चेयरमैन सह प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड बनाम मुकुल कुमार चौधरी रिपोर्टेड इन (2009) 15

एससीसी 620, मामले में आनुपातिकता के सिद्धांत और न्यायिक समीक्षा के तहत उच्च न्यायालय के सीमित दायरे पर पैरा 19, 20, 21 और 22 में इस प्रकार विचार किया है: -

"19. आनुपातिकता का सिद्धांत, इस प्रकार, हमारी न्यायशास्त्र में न्यायिक समीक्षा की एक सुस्थापित अवधारणा है। जो अन्यथा विवेकाधीन क्षेत्र और निर्णय-निर्माता की एकमात्र शक्ति के भीतर है कि एक बार कदाचार का आरोप सिद्ध हो जाने पर दंड की मात्रा निर्धारित करे, ऐसी विवेकाधीन शक्ति न्यायिक हस्तक्षेप के संपर्क में आ जाती है यदि इसका प्रयोग इस तरीके से किया जाता है जो दोष के अनुपात से बाहर है। दंड का अधिनिर्णय जो आरोपों से बहुत अधिक है, वह प्रतिरक्षा का दावा नहीं कर सकता और न्यायिक समीक्षा के सीमित दायरे में हस्तक्षेप के लिए खुला रहता है।

20. दंड की मात्रा के प्रश्न से निपटते समय लागू किए जाने वाले परीक्षणों में से एक यह होगा: क्या कोई तर्कसंगत नियोक्ता समान परिस्थितियों में ऐसा दंड लगाता? स्पष्ट रूप से, एक तर्कसंगत नियोक्ता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह दंड लगाने से पहले कदाचार के माप, परिमाण और डिग्री और अन्य सभी प्रासंगिक परिस्थितियों को ध्यान में रखे और अप्रासंगिक मामलों को बाहर करे।

21. वर्तमान जैसे मामले में जहां दोषी का कदाचार छह महीने के लिए कर्तव्य से अनधिकृत अनुपस्थिति थी, लेकिन ऐसे कदाचार का आरोप लगने पर, उसने निष्पक्ष रूप से अपना

अपराध स्वीकार कर लिया और अपनी अनुपस्थिति के कारणों की व्याख्या करते हुए कहा कि उसका उच्च प्राधिकारी के आदेश की अवज्ञा करने या कंपनी के किसी भी नियम और विनियम का उल्लंघन करने का कोई इरादा या इच्छा नहीं थी, बल्कि कारण पूरी तरह से व्यक्तिगत और उसके नियंत्रण से परे था और, वास्तव में, उसने अपना इस्तीफा भेजा था जिसे स्वीकार नहीं किया गया, सेवा से हटाने के आदेश को उचित नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि हमारे फैसले में, कोई भी तर्कसंगत नियोक्ता समान परिस्थितियों में सेवा से हटाने का चरम दंड नहीं लगाता। दंड न केवल अनुचित रूप से कठोर है, बल्कि आरोपों से बहुत अधिक है।

22. आमतौर पर, हम मामले को दंड के प्रश्न पर पुनर्विचार के लिए उपयुक्त प्राधिकारी को वापस भेज देते, लेकिन वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, यह अभ्यास उचित नहीं हो सकता है। हमारे विचार में, न्याय की मांग पूरी हो जाएगी यदि प्रतिवादी संख्या 1 को छह महीने की अनधिकृत अनुपस्थिति के सिद्ध कदाचार के लिए दंड के तौर पर पूरी अवधि के लिए बकाया वेतन से वंचित कर दिया जाए।"

13. वास्तव में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि दंड की मात्रा में हस्तक्षेप केवल बाध्यकारी और मजबूत परिस्थितियों में ही उचित होना चाहिए, जिन्हें स्पष्ट रूप से दर्ज किया जाना चाहिए और ऐसा हस्तक्षेप अवांछित सहानुभूति या उदारता पर आधारित नहीं हो सकता है। न्याय प्रदान करने की उक्त अवधारणा पर विचार करते हुए, इस न्यायालय को यह

मानने में कोई झिझक नहीं है कि जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, हस्तक्षेप की आवश्यकता है, जो अवांछित सहानुभूति या उदारता पर आधारित नहीं है, बल्कि साम्यपूर्ण न्याय प्रदान करने के आधार पर है जो न्यायिक समीक्षा की एक पहचान है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने संवैधानिक क्षेत्राधिकार के तहत प्रयोग किया जाता है।

14. इस न्यायालय को, जैसा कि ऊपर कहा गया है, किसी भी सहानुभूतिपूर्ण विचारों से अनुचित रूप से प्रभावित हुए बिना न्याय प्रदान करते समय कर्मचारी और नियोक्ता दोनों के हितों को ध्यान में रखना होगा। समग्र तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर जैसा कि ऊपर चर्चा और वर्णन किया गया है, इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि सभी प्रशासनिक निर्णयों में निष्पक्षता होनी चाहिए, खासकर जब दंड लगाते समय, जो एक कर्मचारी को उसकी आजीविका से वंचित करता है, ऐसा निर्णय न केवल कर्मचारी को प्रभावित करता है, बल्कि उनके परिवार के सदस्यों के लिए भी गंभीर परिणाम होते हैं।

15. हालांकि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप लगाए गए हैं कि वह स्वीकृत अवकाश अवधि की समाप्ति के बाद अधिक समय तक रुका, लेकिन याचिकाकर्ता को आरोप-पत्र देते समय इस संबंध में कोई आरोप नहीं लगाया गया। इस आशय का कोई आरोप-पत्र दिए बिना और याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई उचित अवसर दिए बिना, प्रतिवादीगण याचिकाकर्ता के उपरोक्त कृत्य को कदाचार मानने में न्यायोचित नहीं थे।

16. मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए और यह तथ्य कि याचिकाकर्ता ने अनधिकृत रूप से साथी कर्मचारी के स्टाफ क्वार्टर

में प्रवेश किया और जब उसे अधिकारियों द्वारा बाहर आने के लिए कहा गया तो वह बाहर नहीं आया और उसने भागने की कोशिश की और पकड़ा गया, याचिकाकर्ता का ऐसा कृत्य निश्चित रूप से कदाचार की श्रेणी में आता है। यह सच है कि अनुशासन अनुशासित बलों की पहचान है और इसके सदस्यों से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वे साथी सदस्यों के आवास में प्रवेश करके और उच्च अधिकारियों के आदेश की अवज्ञा करके अनुशासन का उल्लंघन करें, लेकिन याचिकाकर्ता का कृत्य ऐसा नहीं है जो उसकी सेवा से बर्खास्तगी को उचित ठहराए। याचिकाकर्ता के उपरोक्त कृत्य या आचरण के लिए "सेवा से बर्खास्तगी" का इतना भारी दंड असंगत है। अनुशासनिक प्राधिकारी कानून के अनुसार याचिकाकर्ता पर कम दंड लगा सकता था।

17. आनुपातिकता के सुस्थापित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित आदेश दिनांक 11.10.2008 और अपीलीय आदेश दिनांक 27.09.2012 और साथ ही पुनरीक्षण आदेश दिनांक 15.01.2013 को रद्द और अपास्त किया जाता है। मामले को दंड के प्रश्न पर पुनर्विचार करने और इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर उचित आदेश पारित करने के लिए उपयुक्त प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित किया जाता है।

18. नतीजतन, वर्तमान याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

19. पक्षकार अपना-अपना खर्च स्वयं वहन करेंगे।

(अनूप कुमार ढंड), जे

आयुष शर्मा /80

अस्वीकरण:- स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय केवल वादियों के अपनी भाषा में लाभ के लिए हैं तथा इनका किसी अन्य उद्देश्य के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता। निर्णय का अंग्रेजी संस्करण सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए प्रामाणिक होगा और इसे लागू करने में प्राथमिकता दी जाएगी।



एडवोकेट विष्णु जांगिड़